घरवाली

इस्मत चुगताई

जिस दिन मिर्ज़ा की नयी नौकरानी लाजो घर में आयी सारे मुहल्ले में खलबली मच गयी। मेहतर, जो मुश्किल से दो झाड़ू मारकर भागता था, अब ज़मीन छीले फेंकता था। ग्वाला, जो दूध में पानी का छींटा देकर सिर मुँड़ जाया करता था; अब घर से कढ़ा हुआ दूध लाने लगा- ऐसा गाढ़ा कि रबड़ का गुमान होता था।

पता नहीं कि किस अरमान-भरी ने लाजो नाम रखा होगा? लाज और शर्म का तो लाजो की दुनिया में कोई मतलब न था। न जाने कहाँ और किसके पेट से निकली, सड़कों पर रुल कर पली। तेरे-मेरे टुकड़े खाकर इस क़ाबिल हो गयी कि छीन-झपटकर पेट भर सके। जब सयानी हो गयी तो उसका जिस्म उसकी वाहिद दौलत साबित हुआ। जल्दी ही वह तो हम उम्र आवारा लौंडों की सोहबत में ज़िन्दगी के अछूते राज़ जान गयी और बिना नकेल की ऊंटनी बन गयी। मोल-तोल की उसे कतई आदत न थी। कुछ हाथ लग गया तो क्या कहने! नक़द न सही तो उधार ही सही। जो उधार की भी तौफ़ीक़ न हो तो खैरात सही।

"क्यों री, तुझे शर्म नहीं आती?" लोग उससे पूछते।

"आती है!" वह बेहयाई से शरमा जाती।

"एक दिन खट्टा खायेगी!"

लाजो को कब परवाह थी? वह तो खट्टा-मीठा एक सांस में डकार जाने की आदी थी। सूरत बला की मासूम पायी थी। आँखें बिना काजल के कलौंच-भरीं, छोटे-छोटे दाँत, मीठा रंग! क्या फीकत किस्म की बरग़लाने वाली चाल पायी थी कि देखने वालों की ज़बाने रुक जातीं और आँखें बकवास करने लगतीं।

मिर्ज़ा कुँवारे थे। हाथ से रोटियाँ थोपते-थोपते अत्तू हो गये थे। बस छोटी-सी बिसातखाने की एक दुकान थी, जिसे वह जनरल स्टोर कहते थे। घर जाकर शादी कराने की फ़ुरसत नहीं मिलती थी। कभी व्यापार ऐसा मन्दा होता कि दिवाला निकलने की नौबत आ जाती। कभी ऐसी टूटकर बिक्री होती कि सिर उठाने की मोहलत न मिलती; सिर पर सेहरा बँधवाने की तो बात ही कहाँ।

बख़्शी को लाजो एक बस-स्टॉप पर मिली थी। बीवी पूरे दिनों से थी; नौकरानी की ज़रूरत थी। जब बच्चा हो गया तो उसे मारकर निकाल दिया। लाजो तो पिटने और निकलने की आदी थी, मगर बख़्शी को कुछ उसकी लत-सी पड़ गयी थी। अब उसे समुन्दर पार बड़े मार्के की नौकरी मिल गयी थी, इसलिए उसने सोचा कि लाओ भाई, उसे मिर्ज़ा के यहाँ डाल आये। कँजरियों में मिट्टी पलीद कराते हैं, ज़रा यह मुफ़्त का माल भी चख देखें।

"लाहौल विला कूव्वत!... मैं नीच औरतों को घर में डालने का क़ायल नहीं!" मिर्ज़ा बिदक गये।

"अरे मियाँ हटाइए भी, सारा काम-काज करेगी!" बख़्शी ने समझाया।

"नहीं भाई! यह लानत कहाँ मेरे सिर मँढ़े जाते हो, अपने साथ क्यों नहीं ले जाते?"

"मेरा अकेले का टिकट आया है, सारे कुनबे का नहीं।"

इतने में लाजो बावर्चीख़ाने पर धावा बोल चुकी थी। लहँगे को लँगोट की तरह कसे हुए, लम्बा बाँस-जिसके

सिर पर झाड़ू बँधी थी-लिये सारे घर में घुमाती फिर रही थी। बख़्शी ने जब उसे मिर्ज़ा के फ़ैसले की खबर दी तो उसे बिल्कुल नोटिस नहीं लिया। उसने पतीलियाँ मचान पर जमाने को कहा और खुद नल पर पानी लेने चली।

"अगर तू कहे तो वापस घर पहुँचा दूँ।"

"चल दूर हो! तू मेरा ख़सम है जो मैके छोड़ आयेगा? जा अपना रास्ता ले, हम यहाँ से निपट लेंगे।"

बख़्शी ने मोटी-मोटी गालियाँ दीं कि हरामज़ादी अकड़ती काहे पे है। लाजो ने उससे भी तगड़ी गालियाँ दीं कि बख़्शी-जैसे लफंगे को भी पसीना छूट गया।

बख़्शी के जाने के बाद मिर्ज़ा की ऐसी सिट्टी गुम हुई कि वह एकदम भाग लिये मस्जिद में और बैठे सोचते रहे कि बेकार का ख़र्च बढ़ेगा। चोरी अलग करेगी! क्या बला सिर पर आ पड़ी? मग़रिब की नमाज़ के बाद घर लौटे तो दम भरकर रह गये! जैसे बी-अम्माँ मरहूमा वापस तशरीफ़ ले आयी हों। घर चन्दन हो रहा था। पानी पीने का कोरा मटका, जिस पर मँजा हुआ कटोरा झिलमिला रहा था, लालटेन साफ़ जगमगाती।

"मियाँ खाना उतार दूँ?" लाजो ने घाट-घाट का पानी पिया था।

"खाना?"

"तैयार है। गर्म-गर्म रोटी डालती हूँ। अभी आप बैठिए।" बिना जवाब सुने वह रसोईघर में चली गयी।

आलू-पालक की तरकारी, धुली मूँग की दाल-ज़ीरा और प्याज़ से बघारी हुई! बस, अम्माँजी के हाथ से खायी थी। गले में निवाला अटकने लगा।

"पैसे कहाँ से लायी?" उन्होंने पूछा!

"बनिये से सामान उधार ले आयी।"

"मैं तुम्हारी वापसी का किराया दे दूँगा।"

"वापसी?"

"हाँ, मेरी हैसियत नहीं।"

कौन माँगे है तनख्वाह?

"मगर...?"

"ज़्यादा मिर्चें तो नहीं?" लाजो ने फुलका रकाबी में डालते हुए पूछा। गोया बात ख़त्म! जी चाहा कि कह दें, नेकबख़त सिर से पैर तक मिर्चें-ही-मिर्चें लगी हुई हैं, मगर लाजो छपाछप ताज़ा फुलके लाने में लगी हुई थी; जैसे रसोई में कोई बैठा पका-पकाकर दे रहा हो।

"ख़ैर सुबह देखा जायेगा।" मिर्ज़ा सोचकर अपने कमरे में चले गये। उमर में पहली बार एक औरत घर में सो रही थी। न जाने कैसा लग रहा था। थके हुए थे, सो गये।

"ना मियाँ, मैं न जाने की!" उन्होंने जब सुबह को उसके घर जाने की बात छेड़ी, तो लाजो ने अल्टीमेटम दिया।

"मगर...।"

"क्या मेरे हाथ का खाना पसन्द नहीं आया?"

"यह बात नहीं।"

"वह तो सब ठीक है मगर...।"

"तो फिर कौन सज़ा हुई...?" लाजो ने गर्म मिजाज़ में कहा।

पहली ही नज़र में लाजो दिल दे बैठी थी। मिर्ज़ा को नहीं, घर को। बग़ैर मालकिन का घर अपना ही हुआ न! घर मर्द का थोड़े ही होता है। वह तो मेहमान होता है। बख़्शी मुआ तो कीड़ों-भरा कबाब था। अलग कोठा करके रखा था और कोठा भी कम्बख़्त नन्दी कुमार की भैंस का। भैंस तो कभी की खुदा को प्यारी हो चुकी थी, मगर ऐसी बू छोड़ गयी थी कि लाजो की रग-रग में रच गयी थी। ऊपर से नखरे करता था सो अलग। यहाँ घर की रानी तो वही थी।

मिर्ज़ा निरे भोंदू थे, यह लाजो ने देखते ही ताड़ लिया था। वाक़ई मेहमानों की तरह आते, चुपचाप जो आगे रख देती खा लेते। वे पैसे दे जाते और दो-चार बार हिसाब पूछा, फिर इत्मीनान हो गया कि लूटती नहीं। वे सुबह को जाते और शाम को आते।

लाजो दिन-भर घर को सँवारती, आँगन में नहाती। कभी जी चाहता तो पड़ोस में रामू की दादी के पास जा बैठती। रामू मिर्ज़ा के स्टोर में काम करता था। लाजो पर फौरन नर्म हो गया। तेरह-चौदह बरस का होगा। मुँह पर ढेरों मुँहासे। बुरी सोहबत में मिट्टी हो गया था। उसी ने बताया कि मिर्ज़ा अक्सर कँजरी के यहाँ जाते हैं।

लाजो को बहुत बुरा लगा। बेकार का खर्चा! डाकिनें होती हैं ये कँजरियाँ! आखिर वह खुद किस मर्ज़ की दवा थी? उसने सोचा। आज तक जहाँ रही, सभी ख़िदमात

खुश-अस्लूबी से सँभाली। लाजो को आये हफ़्ता गुज़र गया था, लेकिन ऐसी बेकद्री उसकी कहीं नहीं हुई। मर्द व औरत के रिश्ते को उसने हमेशा फ़राखदिली से देखा। प्यार ही उसके लिए सबसे हसीन तजुर्बा था। कुछ उमर से उसे इस प्यार से दिलचस्पी पैदा हो गयी थी। न माँ मिली न दादी-नानी, जो ऊँच-नीच समझातीं। इस मामले में लाजो बिल्कुल पड़ोस की बिल्ली थी, जो बिल्लों की मेहरबानी को अपना हक़ समझती थी। इधर-उधर से बहुत पैग़ामात उसे मिल रहे थे, मगर वह मिर्ज़ा की नौकरानी थी; नहीं गयी। उनको टाल दिया कि लोग हँसेंगे मिर्ज़ा पर।

मिर्ज़ा ऊपर से बर्फ़ का तूदा बने बैठे थे, अन्दर बेचारों के ज्वालामुखी दहक रहा था। जान-बूझकर वे घर से कटे-कटे से रहते। अजीब दिल का आलम था। कुछ मुहल्ले के मनचलों की भी उनकी दहशत में हाथ था। जिधर देखा लाजो के चर्चे। आज उसने दूधवाले का मुँह खसोटा, कल पनवाड़ी के थोबड़े पर गोबर उठाकर दे मारा! जिधर भी जाती, लोग हथेली पर दिल लेकर दौड़े पड़ते थे। स्कूल के मास्टरजी गली में मिल जाते तो उसे शिक्षा देने पर उतारू हो जाते। मस्जिद से निकलते हुए मुल्लाजी भी उसके कड़ों की आवाज़ सुनकर बलाओं को भगाने वाली, आयतलकुर्सी पढ़ने लगते।

मिर्ज़ा कुछ चिढ़े हुए से घर में घुसे। लाजो उसी दम नहाकर आयी थी। गीले बाल कन्धों पर पड़े थे। चूल्हा फूँकने की वजह से गाल तमतमा रहे थे। आँखें छलक रही थीं। मियाँ को बेवक़्त आता देखकर उसने दाँत निकोस दिये। मिर्ज़ा बड़बड़ा कर गिरने से बचे। उन्होंने सिर झुकाकर रोटी खायी! फिर जाकर मस्जिद में बैठ गये। मगर दिल घर में पड़ा था। पता नहीं बैठे-बिठाये उन्हें घर क्यों एकदम याद आने लगा था? लौटे तो लाजो दरवाज़े पर खड़ी किसी से झगड़ रही थी। मिर्ज़ा को देखकर वह मटक गया।

"कौन था...?" उन्होंने शक्की शौहर की तरह पूछा।

"रघुवा।"

"रघुवा...?" मिर्ज़ा बरसों से दूध लेते थे, मगर ग्वाले का नाम भी मालूम नहीं था।

"दूध वाला!"

"हुक्का ताज़ा करूँ मियाँ?" लाजो ने बात टाली।

"नहीं। क्या कहता था?"

"पूछता था कितना दूध लाऊँ?"

"फिर तुमने क्या कहा...?"

"मैंने कहा, तेरी अरथी उठे! जितना रोज़ लाता है।"

"फिर?" मिर्ज़ा सुलग गये।

"फिर मैंने कहा, हरामी, अपनी अम्माँ-भैसा को दूध पिला।"

"उल्लू का पट्ठा, बड़ा हरामी है रघुवा! बन्द कर दूध, हम स्टोर से वापसी पर ले आया करेंगे।"

रात को खाना खाने के बाद मिर्ज़ा ने बड़े ठस्से के साथ कलफदार कुर्ता पहना, इतर की फुरेरी कान में अटकाई और छड़ी सँभालकर खँकारते हुए चल दिये। लाजो जल-भुनकर कबाब हो गयी। पतिव्रता की तरह गुमसुम देखती रही और मन-ही-मन में उस कँजरी को कोसती रही। वह मिर्ज़ा को पसन्द नहीं? ऐसा तो कभी नहीं हुआ।

कँजरी अपने दूसरे ग्राहक को निपटा रही थी कि मिर्ज़ा बिगड़कर लाला की दुकान पर जा बैठे। मँहगाई और सियासी उलट-फेर पर जी जलाकर वापस झुँझलाते हुए लौटे तो ग्यारह बज चुके थे। पानी की सुराही सिरहाने रखी हुई थी, मगर ध्यान न गया। बावर्चीखाने वाले दर्रे में एक मटका रखा था, गटगटाकर ठण्डा पानी पिया। मगर जी की आग और भड़क उठी।

लाजो की चिकनी सुनहरी टाँग दरवाज़े की आड़ से झाँक रही थी। बेढंगी-सी करवट पर उसके कड़े खनखनाये। टाँग और पसर गयी। मिर्ज़ा ने एक गिलास और चढ़ाया। वे लाहौल का पाठ करते हुए पलँग पर गिर पड़े।

करवटें ले-लेकर जिस्म छिल गया। पानी पी-पीकर पेट नक्कारा हो गया। दरवाज़े के पीछे से टाँग कुछ और भी अड़ंगे लगाने लगी। अनजाना खौफ़ गला दबोचने लगा। बड़ा ऊधम मचायेगी नामुराद, मगर शैतान ने पीछे से ढकेलना शुरू किया। अपने पलँग से एक दर्रे तक न जाने कितने मील के चक्कर काट चुके थे। अब उनमें दम नहीं था।

एक भोला-भोला-सा ख़याल उनके दिल में सिर उठाने लगा कि अगर लाजो की टाँग इतनी खुली न रहे तो उन्हें

उतनी प्यास न लगे। ख़याल ने जैसे ही फन उठाया, उनकी हिम्मत बढ़ गयी। नामुराद जाग गयी तो न जाने क्या समझेगी? मगर अपने बचाव की ख़ातिर ख़तरा भी तो मोल लेना ही पड़ता है।

जूते पट्टी तले छोड़े और दबे पाँव वह साँस रोके आगे बढ़े। चुटकी से लहँगे की गोट पकड़कर खींच दी। दूसरे लम्हे उन्हें पछतावा भी होने लगा कि शायद ग़रीब को गर्मी लग रही हो। थोड़ी देर बग़ैर फैसलाकुन अन्दाज़ में खड़े काँपते रहे, फिर दिल पर पत्थर रखकर वापस मुड़े।

अभी उनके ठिठकते क़दम चौखट तक न पहुँचे थे कि क़यामत टूट पड़ी। एक करवट लगाकर लाजो ने उन्हें जा लिया! मिर्ज़ा की घिग्घी बँध गयी। मिर्ज़ा के साथ ज़िन्दगी में ऐसी बेजा कभी न हुई थी। वह हायँ-हायँ करते रहे और लाजो ने उनकी लाज लूटी ली।

सुबह को मिर्ज़ा लाजो से ऐसे शरमा रहे थे जैसे नयी ब्याही दुल्हन! लाजो सीना-ज़ोर फ़ातेह (विजयिनी) की तरह गुनगुना रही थी और पराँठों में घी की तहें जमा रही थी। उसकी आँखों में रात की बात का कोई अक्स न था। वैसे ही रोज़ना की तरह दहलीज़ पर बैठी मक्खियाँ उड़ाती रही। मिर्ज़ा डर रहे थे कि अब वह उँगली पकड़ पोंचा पकड़ेगी।

दोपहर को जब वह उनके लिए खाना लेकर दुकान पर पहुँची तो उसकी चाल मे अजीब-सा ठुमका था। लाजो को देखकर लोग ख्वाहमख्वाह भी चीज़ों का भाव पूछने आ जाया करते थे। मारे-बाँधे कुछ ख़रीदना भी पड़ जाता था। बग़ैर कहे लाजो फौरन सामान नाप-तोलकर देने लगती। हर चीज़ के साथ ढेरों मुस्कराहटें और नख़रे भी बाँध देती। इतनी-सी देर में वह इतनी बिक्री कर जाती कि मिर्ज़ा से सुबह से शाम तक न हो पाती। आज उन्हें यह बात नागवार गुज़र रही थी।

मगर अब तो जो मिर्ज़ा के सो राजा के नहीं। क्या बोटी चढ़ गयी और रंग निकल आया। लोग वजह जानते थे और मरते थे। मिर्ज़ा की भी दिन-ब-दिन बौखलाहट बढ़ती जा रही थी। जितनी वह उनकी ख़िदमतगुज़ारी करती गयी, वे उसके उतने ही दीवाने होते गये। उनके दिल में दुनिया का ख़ौफ़ बढ़ता गया। उन्हें लाजो की बेतकल्लुफ़ियों का मदहोशकुन तजुर्बा था। परले दर्ज़े की बेहया थी। खाना लाती तो बाज़ार में भूचाल आ जाता। किसी की चुटकी बजती, किसी को ठेंगा दिखाती, कूल्हे मटकाती, गालियाँ झाड़ती हुई आती तो मिर्ज़ा का खून खौल जाता। वे कहते—

"तुम खाना लेकर न आया करो।"

"काहे को?" लाजो का मुँह उतर जाता।

सारे दिन अकेली बैठी बौरा जाती थी। बाज़ार में ज़रा रंग जमता था, हँसी दिल्लगी चलती थी।

जब कभी वह खाना लेकर न आती तो मिर्ज़ा के दिल में तरह-तरह के शुब्हे उठने लगते। न जाने क्या गुल खिला रही होगी, वे सोचते। मिर्ज़ा वक़्त-बेवक़्त जासूसी करने आ धमकते। वह फौरन उनकी थकान उतारते पर आमादा हो जाती। ऐसी फंकैत लौंडिया से ख़ौफ़ न आयेगा?

एक दिन जो यो एकदम घर पहुँचे तो देखा, लाजो रद्दी काग़जवाले को बेनुक़्त सुना रही है और रद्दीवाला दाँत निकोसे शर्बत के-से घूँट गुटक रहा है।

मिर्ज़ा को देखा तो भागा। मिर्ज़ा ने उसी दम लपककर गर्दन नापी और कस-कस के दो झापड़ लगाये, दी एक लात।

"क्या क़िस्सा था?" मिर्ज़ा के नथुने फूले।

"मौतपड़ा दस आने सेर के दे रहा था। मैंने कहा, अपनी माँ को दे जाकर, हरामज़ादे!"

रद्दी का खुला भाव आठे सेर का था।

"तुमसे किसने कहा है रद्दी बेचने को?" मिर्ज़ा बड़ बड़ाये और पैर खींचकर तस्मे खोलने लगे।

बस उस दिन तो उनके जलाल की इन्तेहा न रही, जब उन्होंने लाजो को गली के लौंडों के साथ कबड्डी खेलते देखा। उसका लहँगा हवा में कुलाचें मार रहा था। बच्चे तो कबड्डी खेल रहे थे और बच्चों के बाप लहँगे की फ़ैयाज़ी से लुत्फ उठा रहे थे। ये सब बारी-बारी से उसे कोठा दिलाने की पेशकश कर चुके थे, जो लाजो ने ठुकरा दी थी।

मिर्ज़ा निहायत शर्मिन्दगी से सिर झुकाये गुज़र गये। लोग उन पर हँस रहे थे। मियाँजी का गुर्रा तो देखो, जैसे वह उनकी ब्याहता ही तो है।

लाजो उनकी जान को रोग की तरह चिमट गयी थी। उसकी जुदाई के ख़याल से ही उनके पसीने छूटने लगते थे।

स्टोर में तो अब बिल्कुल जी न लगता। सारे वक़्त लाजो का ख़याल सताता कि न जाने कब किसी भारी पेशकश पर नामुराद की राल टपक पड़े।

"मियाँ निकाह क्यों ना पढ़वा लेते?" मिर्ज़ा के दुखड़ा रोने पर मीरन मियाँ ने राय दी।

"लाहौलविला कूव्वत! निकाह जैसी मुकद्दस रस्म को इस बदकार औरत से कैसे वाबिस्ता किया जा सकता है? ज़माने-भरे में लहँगा उछालकर अब वह उनकी दुल्हन कैसे बन सकती है?"

मगर जब शाम को वापसी पर लाजो ग़ायब मिली तो उनके पैरों तले से ज़मीन खिसक गयी। लाला कम्बख़्त बहुत दिनों से सूँघ रहा था। कोई ढँकी-छुपी बात नहीं थी, उसने पुकारकर सबके सामने कहा था कि कोठा नहीं, वह कहे तो बँगला ले देगा। मीरन मियाँ बड़े दोस्त बनते थे, लेकिन चुपके से उन्होंने भी हस्बे-हैसियत नज़राना पेश किया था।

मिर्ज़ा बौखलाये हुए बैठे थे कि लाजो आ गयी। वह रामू की दादी की पीठ मलने गयी थी। उस दिन मिर्ज़ा ने फैसला कर लिया कि ख़ानदान की नाक कटे या सलामत रहे, लाजो को निकाह में लाना पड़ेगा।

"काहे को मियाँ?" लाजो बौखलाकर बोली।

"क्यों? क्या कहीं और दीदे लड़ाने का इरादा है?" मिर्ज़ा बिगड़कर बोले।

"थू... थू... काहे को लड़ाऊँ दीदे!"

"वह राव जी, बँगला दिलाने को कहता है।"

"मैं थूकूँ भी न उसके बँगले पर, जूती मार दी मैंने तो उसके थोबड़े पर।"

"तो फिर...?"

मगर लाजो यह न समझा सकी कि ब्याह करने की क्या ज़रूरत है? वह तो जन्म से उनकी है और उनकी ही रहेगी। फिर ऐसी कौन-सी ख़ता हुई जो मियाँ को निकाह की ज़रूरत महसूस हुई? पर ऐसा मालिक तो न जाने कितने जनम भोगने पर मिलता है। लाजो ने बहुत ठोकरें खायी थीं। मिर्ज़ा उसे फ़रिश्ते मालूम होते थे। उसके सब आशिक़ उसके मालिक बन जाते थे, फिर उसे चार चोट की मार दिया करते थे।

मिर्ज़ा ने कभी उसे फूल की छड़ी भी न छुई और प्यार भी जी-भरकर किया। उसने दो जोड़े बनाकर दिये और सोने की मुँदरियाँ दिलायीं। सच्चे-सोने का ज़ेवर तो उसकी सात पीढ़ी ने न पहना होगा।

उन्होंने रामू की दादी से कहा, तो वह भी हैरत में पड़ गयी।

"ए मियाँ काहे को गले में घण्टी बाँधो, क्या सुसरी नखरे करने लगी है? तो मार दो चुड़ैल को, ठीक हो जायेगी। जहाँ जूतेकारी से काम चल जाय वहाँ निकाह की कहाँ गुंजाइश है?"

मगर मिर्ज़ा को तो एक ही रट लगी थी, अगर मेरी है तो मेरे निकाह में आ जाय।

"क्यों री क्या तुझे धरम की ओट लगे है?"

"ना मैया ऐसी बात ना, मैं तो उन्हें अपना मानती हूँ।"

लाजो बड़ी मीठी तबीयत की थी। वह तो दो घड़ी के ग्राहक को भी दम-भर के लिए पति मानकर उसकी सेवा करती थी। उसने कभी अपने किसी आशिक़ के साथ कंजूसी नहीं की। धन नसीब न हुआ। तन और मन उसने सैंतकर न रखा। जिसे दिया, जी भरकर दिया। लिया भी तो जी भरकर ही था। मिर्ज़ा की तो बात ही निराली थी कि उन्हें देने और उनसे छीनने में जो मज़ा आता था, वह कोई लाजो के दिल से पूछता! उनके सामने सब ढीठ कुत्ते मालूम होते थे। वह अपनी हक़ीक़त जानती थी। शादी-ब्याह तो कुँवारियों के होते हैं और अपने होश में वह कभी कुँवारी थी ही नहीं। वह किसी की दुल्हन बनने के लायक नहीं।

वह बहुत हाथ-पाँव जोड़कर गिड़गिड़ाई, मगर मिर्ज़ा पर निकाह का भूत सवार था। नेक साइत देखकर एक दिन इशा की नमाज़ के बाद निकाह हो ही गया। बस तमाम मुहल्ले-टोले में ऊधम मच गया। लौंडियाँ-बालियाँ ढोलक लेकर सुहाग गाने लग गयीं। कोई दुल्हनवाली बन गयी, कोई दूल्हावाली।

मिर्ज़ा ने हँस-हँसकर नेग दिया और लाजो उर्फ़ कनीज़ फ़ातमा, मिर्ज़ा इरफ़ान बेग के निकाह में आ गयी।

मिर्ज़ा ने लहँगे पर पाबन्दी लगी दी और तंग मोरी का पाजामा-कुर्ता बनवा दिया। कनीज़ फातमा को टाँगों के बीच में खुला की आदत थी। दो अलग-अलग पाँयचे,

जिनमें दो टाँगों के बीच में कपड़ा आ जाये, निरा झंझट है। वह बार-बार उस फिजूल रुकावट को खींच जाती। पहली फ़ुर्सत में उसने पाजामा उतार अलगनी पर डाला और लहँगा उठाकर सिर से पहन ही रही थी कि मिर्ज़ा आ गए। उसने लहँगा कमर पर रोकने की बजाय छोड़ दिया।

"लाहौल विला कूव्वत" मिर्ज़ा गरजने लगे और चादर खींचकर उस पर डाल दी। न जाने क्या मिर्ज़ा ने भाषण झाड़ा, उसके कुछ पल्ले न पड़ा कि उसने क्या गलती की है? उसकी इस हरकत पर तो मिर्ज़ा की जान जाया करती थी! अब मिर्ज़ा ने अच्छा-भला लहँगा उठाकर सचमुच चूल्हे में दिया।

मिर्ज़ा भिन-भिन करते चले गये, वह चोर-सी बैठी रह गयी। चादर फेंककर उसने अपने जिस्म का मुआयना किया कि कहीं कोढ़ तो नहीं फूट आया! नल के नीचे नहाती हुई वह बार-बार आँसू पोंछती रही। फिरकीवाले का लौंडा मिठुवा पतंग उड़ाने के बहाने पास की छत पर से उसे नहाते देखा करता था। आज वह ऐसी उदास थी कि न उसे अँगूठा दिखाया और न जूती से धमकाया; न ही भागती हुई कोठे पर गयी, बल्कि चादर लपेट ली।

दिल पर पत्थर रखकर उसने शैतान की आँत जैसी मोरियाँ चढ़ायीं। मरे पर सौ दर्रे, ऊपर से कमरबन्द सटक गया। चिल्ला-चिल्लाकर गला पड़ गया तब बिल्लो आयी और कमरबन्द पड़ा।

यह बन्दूक का गिलाफ़ किस बदमज़ाक ने ईजाद किया होगा, जितनी बार टट्टी जाऊँ, खोलूँ-बाँधूँ।

मिर्ज़ा जब दुकान से लौटे तो फिर कमरबन्द सटक गया था। वह उँगली से पकड़ने की कोशिश कर रही थी। मिर्ज़ा को उस पर प्यार आ गया। चुमकारकर गोद में समेट लिया। बड़ी तिकड़मों से कमरबन्द हाथ में आया। तब उसे पाजामे से उतनी शिकायत न रही।

एक मुसीबत और खड़ी हो गयी। पहले जो लाजो की रानाइयाँ थीं, वह मिर्ज़ा की दुल्हन में बेहयाइयाँ गयीं। ये बाज़ारी औरतों के लटके शरीफज़ादियों पर ज़ेब नहीं देते। वह उनके ख़्वाबों की रिवायती दुल्हन न बन पायी कि मिर्ज़ा प्यार की भीख माँगें। यह शरमाये, वह ज़िद करें। यह बिगड़ जायेगी! वे मनायें, यह रूठ जाय! लाजो तो सड़क का पत्थर थी। सेंजों के फूल बनने के गुर नहीं जानती थी। डाँट-डाँटकर मिर्ज़ा ने लगामें लगायीं। आख़िरकार बँदरिया को सुधार ही लिया।

मिर्ज़ा अब निहायत ही मुतमइन थे कि उन्होंने लाजो को शरीफ़ज़ादी बनाकर ही छोड़ा। यह और बात है कि अब उन्हें घर भागने की ज़्यादा जल्दी नहीं होती। आम शौहरों की तरह यार-दोस्तों में भी उठ-बैठ लेते, कि लोग जोरू का गुलाम न कहें। माशूक के नाज़ उठाना और बात है, मगर बीवी की जूतियाँ मर्द बर्दाश्त नहीं कर सकता।

अपनी गैरहाज़िरियों की तलाफ़ी करने के लिए उन्होंने एक मामा (नौकरानी) रखने की तजवीज पेश की, मगर लाजो की आँखों में खून उतर आया। वह जानती थी कि मियाँ कँजरी के पास जाने लगे हैं। सारे मुहल्ले के मियाँ लोग जाते थे, मगर घर में वह किसी का अमल-दख़ल बर्दाश्त नहीं कर सकती। कोई उसके झमझमाते बर्तनों को हाथ लगाये, उसकी रसोई में क़दम रखे; तो उसकी टाँगें चीरकर फेंक देगी। वह मिर्ज़ा में साझा बर्दाश्त कर सकती थी, मगर घर की वही अकेली मालकिन थी।

फिर मिर्ज़ाजी जैसे लाजो को घर में रखकर भूल गये। हफ़्तों 'हूँ-हाँ' से आगे बात न होती। जब तक वह दाशता थी, सब आँखें सेंकते थे। जब किसी शरीफ के घर बैठ गयी तो मुहल्ले-टोले के उसूलों के तहत माँ, बहिन और बेटी हो गयी। कोई भूलकर भी टाट के पर्दे के पीछे से निगाहें डालने की ज़हमत न करता। सिवा मिठुवा-फिरकीवाले के लौंडे के। वह अब भी वफ़ा निभा रहा था और कोठे पर पतंग उड़ाता। जब मिर्ज़ा चले जाते तो लाजो काम-काज से फारिग़ होकर नल के नीचे नहाने बैठती। पर्दे के ख़याल से ही तो नल लगवाया था। और फिर लाजो ने कोठे की तरफ भी देखना छोड़ दिया था।

उस रात मिर्ज़ा यार दोस्तों के साथ दशहरे के दिन जश्न मनाने ग़ायब रहे थे। सुबह लौटे और जल्दी-जल्दी नहा-धोकर स्टोर चले गये। लाजो तो चढ़ी बैठी थी, बस तभी उसकी कोठे की तरफ चली गयी या शायद मिठुवा की नज़र में भाले लगे हुए थे। बस, उसके गीले जिस्म में घुस गये। लौंडे की बहुत दिन बाद उस दिन पतंग कट गयी। डोर टूटी तो लाजो की पीठ पर घस्सा मारती चली गयी।

लाजो ने सिसकारी भरी और चादर बग़ैर उठकर कोठरी में लपक गयी। एक बिजली-सी कौंधी और सामने की कोठी पर गिरी। फिर उसे ख़याल आया कि नल तो खुला ही छोड़ आयी थी, लिहाज़ा वापस फिर उल्टे पाँव भागी।

इसके बाद जब कभी लाजो हलवाई के यहाँ से कुछ मँगवाने को टाट का पर्दा सरकाती तो मिठुवा आस-पास ही मँडराता नज़र आता।

"ऐ मिठुवे, क्या दिन-भर गोबर का-सा चोथ बना बैठा रहे है? अरे जा ज़रा दो कचौरियाँ तो ला दे। चटनी में खूब सारी मिर्चें डलवाइयो!"

मिठुवा और भी हिल गया। अगर ग़लती से नहाते वक़्त कोठे पर न नज़र आता तो फड़फ़ड़ाके जाग उठता। वह जो प्यार सारी उमर दोनों हाथों से लुटाती आयी थी, मिठुवा के लिए भी हाज़िर था। मिर्ज़ा अगर किसी वक़्त का खाना न खाते तो वह फेंक थोड़े ही देती; किसी ग़रीब हाज़तमन्द को खिला देती थी। मिठुवा से ज़्यादा उसकी इनायत का कौन हाज़तमन्द था?

मिर्ज़ा ने लाजो के पैर में ब्याह की ज़ंजीरें डालकर सोच लिया कि अब हो गयी वह गिरहस्थिन। अपनी आँखों से न देखते तो यक़ीन भी न करते। लाजो ने जो उन्हें यों बेवक़्त चौखट पर खड़े देखा तो बेअख़्तियार हँसी निकल गयी। उसने ख़्वाब में भी न सोचा था कि मिर्ज़ा इस शिद्दत से बुरा मानेंगे। मिठुवा ताड़ गया और धोती उठाकर ऐसा भागा कि तीन गाँव पार करके ही दम लिया।

मिर्ज़ा ने लाजो को इतना मारा कि अगर उसने दुनिया के सर्द व गर्म न झेले होते तो वह अल्लाह को प्यारी हो जाती। उसी वक़्त यह ख़बर सारे गाँव में आग की तरह फैल गयी कि मिर्ज़ा ने अपनी घरवाली को मिठुवा के साथ पकड़ लिया और दोनों को जहन्नुम दाख़िल कर दिया। मिर्ज़ा का मुँह काला हो गया। ख़ानदान की नाक कट गयी। लोग जोक-दर-जोक तमाशा देखने जमा हो गये। मगर यह देखकर उन्हें सख़्त नाउम्मीदी हुई कि मिठुवा तिड़ी हो गया और घरवाली टूट-फूट गयी। 'मगर जी जायेगी, रामू की दादी उसे समेट लेगी।'

कोई सोचेगा कि इतने जूते खाने के बाद लाजो को मिर्ज़ा की सूरत से नफ़रत हो गयी होगी! तौबा कीजिए! जूताकारी से तो असल बन्धन बँधा, जो कि निकाह से भी न बँधा था। वह तो होश में आते ही मिर्ज़ा की ख़ैरियत पूछने लगी। उसके सभी आक़ा देर-सवेर उसके आशिक बन बैठते थे। उस इनायत के बाद तो तनख़्वाह का सवाल ख़त्म हो जाता। मुफ़्त की रगड़ाई ऊपर से। चार चोट की मार! मिर्ज़ा ने आज तक उसे फूल की छड़ी न छुआई थी। दूसरे आका उसे यार-दोस्तों को मँगनी दे देते थे। मिर्ज़ा ने आज तक अपनी चीज़ समझा, उस पर अपना हक़ जाना। यह उसकी इज़्ज़त अफ़जाई थी! हालाँकि इस्तेमाल में नहीं थी, फिर भी उन्हें इतनी प्यारी थी। दर्द पर मिर्ज़ा की टीस ग़ालिब हो गयी सबने उसे समझाया कि जान की अमान चाहती है तो भाग जा, मगर वह न मानी।

मीरन मियाँ मिर्ज़ाजी को रोके हुए थे। बग़ैर नाक-चोटी काट के क़त्ल किये कोई चारा न था। उनकी नाक कट गयी, लाजो ज़िन्दा बच गयी। अब वह दुनिया को कैसे मुँह दिखायेंगे?

"अमाँ एक मालज़ादी की ख़ातिर फाँसी पर चढ़ जाओगे?"

"परवाह नहीं।"

"मियाँ तलाक़ दे दो साली को और छुट्टी।" मीरन मियाँ ने समझाया। "अरे कोई शरीफज़ादी होती तो और बात थी।"

मिर्ज़ा ने उसी वक़्त तलाक दे दी। मुब्लिग बत्तीस रुपये महर और उसक कपड़े-लत्ते रामू की दादी के घर पहुँचवा दिया।

लाजो को जो तलाक़ की ख़बर पहुँची तो जान में जान आ गयी। जैसे सिर से बोझ उतर गया। निकाह तो उसे रास नहीं आया था। यह सब इसी मारे हुआ। चलो पाप कटा!

"मियाँ तो नाराज़ नहीं?" उसने रामू की दादी से पूछा।

"तेरी सूरत ना देखना चाहूँ, कहीं निकल जा यहाँ से मुँह काला करके।" दादी ने कहा।

मिर्ज़ा की तलाक़ की खबर मुहल्ले में सरपट दौड़ गयी तुरन्त लाला ने पैग़ाम भिजवाया—

"बँगला तैयार है।"

"उसमें अपनी अम्माँ को बैठा दे!" लाजो ने कहलवा दिया।

मुब्लिग़ बत्तीस रुपये में से दस उसने बोर्डिंग और लॉजिंग के रामू की दादी को दिये। तंग पाजामे शकूरा की बहू के हाथ औन-पौने बेच लिये। पन्द्रह दिन में लोट-पोटकर खड़ी हो गयी। कम्बख़्त की जैसे धूल झड़ गयी! जूते खाकर और निखर आयी। कमर में सौ-सौ बल पड़ने लगे। पान का बीड़ा लेने या सेव-कचौरी लेने हलवाई की दुकान तक निकल जाती तो गली की चहल-पहल बढ़ जाती। मिर्ज़ा के दिल पर आरे चलते।

एक दिन पनवाड़ी से खड़ी इलायची के दानों पर झगड़ रही थी। वह मज़े ले रहा था। मिर्ज़ा कटे-कटे नज़र बचाकर निकल गये।

"अमाँ तुम्हें तो हो गया है ख़ब्त, अब तुम्हारी बला से, वह कुछ भी करती फिरे! तुमने तो तलाक़ दे दी, तुम्हारा अब उससे क्या रिश्ता?" मीरन मियाँ ने समझाया।

"वह मेरी बीवी थी, मैं कैसे बर्दाश्त कर सकता हूँ?" मिर्ज़ा बिगड़ गये।

"तो क्या हुआ, अब तो नहीं बीवी! और सच पूछो तो वह तुम्हारी थी ही नहीं।"

"और निकाह जो हुआ था।"

"कतई नाजायज़"

"यानी कि...।"

"हुआ ही नहीं बिरादर, न जाने वह किसकी नाजायज़ औलाद होगी! नाजायज़ से निकाह हराम।" मीरन मियाँ ने फ़तवा जड़ा।

"तो निकाह हुआ ही नहीं?"

"कतई नहीं।"

बाद में मुल्लाजी ने साद कर दिया कि हरामी औलाद से निकाह जायज़ नहीं।

"तो गोया हमारी नाक भी नहीं कटी।" मिर्ज़ा मुस्कराये! चलो सिर से बोझ हट गया।

"बिल्कुल नहीं।" मीरन मियाँ ने रोका।

"भाई मेरे, निकाह ही नहीं हुआ तो फिर तलाक़ कैसे हो सकती है।"

"मुब्लिग बत्तीस रुपये महर के मुफ़्त ही में गये।" मिर्ज़ा को अफ़सोस होने लगा।

फ़ौरन यह ख़बर सारे मुहल्ले में छलाँगें मारने लगी कि मिर्ज़ा का उनकी घरवाली से निकाह ही नहीं हुआ, न तलाक़ हुई। मुब्लिग़ बत्तीस रुपये बेशक डूब गये।

लाजो ने जब यह ख़ुशख़बरी सुनी तो नाच उठी। सीने पर से बोझ फिसल गया कि निकाह और तलाक़ एक डरावना ख़्वाब था, जो खत्म हो गया और जान छूटी।

सबसे ज़्यादा खुशी तो इस बात की थी कि मियाँ की नाक नहीं कटी। उसे मियाँ की इज़्ज़त जाने का बड़ा दुख होता। हरामी होना कैसा वक़्त पर काम आया। खुदा-न-ख्वास्ता इस वक़्त वह किसी की जायज़ औलाद होती तो छुट्टी हो जाती।

रामू की दादी के घर में उसका दम घुट रहा था। ज़िन्दगी में कभी यों घर की मालकिन बनकर बैठने का मौक़ा नहीं मिला था। उसे घर की फिकर लगी हुई थी। चोरी-चकारी के डर से मियाँ ने इतने दिन से झाड़ू भी नहीं दिलवायी थी। कूड़े के अम्बार लग रहे होंगे। वह स्टोर जा रहे थे। लाजो ने रास्ता रोक लिया।

"फिर मियाँ, कल से काम पर आ जाऊँ?" वह इठलाई।

"लाहौल विला कूव्वत!" मिर्ज़ा सिर न्यौढ़ाये लम्बे-लम्बे डग मारते निकल गये। दिल में सोचा, कोई मामा तो रखनी ही होगी, यह बदज़ात ही सही। बात साफ़ हो गयी।

लाजो ने कल-वल का इन्तज़ार नहीं किया, छतों-छतों घर में कूद गयी। लहँगे का लँगोट किया और जुट गयी।

शाम को मिर्ज़ा लौटे तो ऐसा लगा कि मरहूमा बी-अम्माँ आ गयी हों। घर साफ़, चन्दन व लोबान की भीनी-भीनी खुशबू, कोरे मटके पर झिलमिलाता मँजा हुआ कटोरा... जी भर आया। चुपचाप भुना हुआ सालन और रोटी खाते रहे। लाजो अपनी हैसियत के मुताबिक़ दहलीज़ पर बैठी पंखा करती रही।

रात को दो टाट के पर्दे मिलाकर जब बावर्चीख़ाने में लेटी तो मिर्ज़ा पर फिर शिद्दत की प्यास का दौरा पड़ा। जी मारे लेटे उसके कड़ों की झनकार सुनते रहे; करवटें बदलते रहे।

जी कह रहा था कि बड़ी बेकद्री की थी उन्होंने उसकी!

"लाहौल विला कूव्वत...." यकायक वह भन्नाये हुए उठे और टाट पर से घरवाली को समेट लिया।